अन्तर्राष्ट्रीय वेदान्त मिशन की मासिक ई - पत्रिका

वेदान्त पीयूष

वर्ष २१ अप्रैल - २०२१ प्रकाशन - ०४

सम्पादिका :

स्वामिनी अमितानन्द सरस्वती

वेदान्त पीयूष

अप्रैल २०२१

प्रकाशक

आन्तराष्ट्रिय वेदान्त आश्रम,

ई - २९४८, सुदामा नगर

इन्दौर - ४५२००९

Web : https://www.vmission.org.in

email : vmission@gmail.com

ॐ
सदाशिवसमारम्भाम्
शंकराचार्य मध्यमाम्
अस्मदाचार्य पर्य न्ताम्
वन्दे गुरु परम्पराम्

वेदान्त पीयूष

विषय सूचि

1.	श्लोक	7
2.	पू. गुरुजी का संदेश	8-9
3.	वेदान्त लेख	10-12
4.	दृग्दृश्य विवेक	14-17
5.	गीता चिन्तन	18-23
5.	श्री लक्ष्मण चरित्र	24-26
6.	जीवन्मुक्त	28-31
7.	कथा	32-33
8.	मिशन-आश्रम समाचार	34-55
9.	इण्टरनेट समाचार	56
10	आगामी कार्यक्रम	57
11	लिन्क	58

अप्रैल 2021

अकाण्डब्रह्माण्ड क्षयचकित देवासुरकृपा
विधेयस्यसीद्यस्त्रिनयन विषं संहृतवतः।
स कल्माषः कण्ठे तव न कुरुते न श्रियमहो
विकारोऽपि श्लाघ्यो भुवनभयभंगव्यसनिनः।।

(शिवमहिम्नः स्तोत्रम्)

हे त्रिनयन! असमय में अचानक ब्रह्माण्ड का नाश होता हुआ देखकर भयभीत देवता तथा असुरों के उपर कृपा करके आपने विषपान किया। उस वजह से आपके कण्ठ में नीला निशान रूप दाग हो गया। यह विकार होते हुए भी आपके कण्ठ में अत्यन्त शोभायमान हो रहा है। जो कि वाकई प्रशंसनीय है। ऐसा लगता है कि आपको समस्त लोकों के भय को दूर करने का व्यसन लगा हुआ है।

वेदान्त पीयूष

पूज्य गुरुजी का सन्देश

वैराग्यमेवाभयम्

वैराग्य ही अभयस्वरूप है। यही मुक्ति का पर्याय है। विराग अर्थात् राग और द्वेष का अभाव। राग के पीछे अविवेकजनित कामना होती है। किसी वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति के प्रति सुख, सुरक्षा और पूर्णता देने के सामर्थ्य को आरोपित करने पर उससे राग होता है। उसे महत्वपूर्ण जानकर उसकी प्राप्ति हेतु कर्म, सम्बन्धादि होते है। उसके आगे भगवान भी गौण हो जाते है और भगवान से उसीके लिए प्रार्थना होती है। उन अस्थायी के प्रति राग की वजह से जीवन में सदैव संकुचिता, दीनता व पराधीनता बनी रहती है। यही भय का कारण है।

राग के उपरान्त हमारा जीवन बुद्धि तथा विवेक से संचालित नहीं, किन्तु रागादि से संचालित, प्रतिक्रियात्मक जीवन होता है। शनैः शनैः संवेदना तथा स्वतंत्रता खतम होते जाते है। अनित्य के प्रति आश्रित होने से तथा बुद्धिगत ज्ञान के साथ विरोध होने से सदैव अशान्ति बनी रहती है। अन्य ज्ञान और अनुभूति के लिए उपलब्धता नहीं हो पाते है। नए ज्ञान की उपलब्धता के अभाव में अभयस्वरूप ब्रह्म में जाग्रति की सम्भावना समाप्त हो जाती है।

अतः वीतराग होना हमारा लक्ष्य है। यही संवेदना, प्रेम और स्वतंत्रता का, दीनता और भय से मुक्ति का जीवन है। इससे मन की चंचलता व अशान्ति से मुक्त होते जाते है।

अतः हर परिस्थिति को ईश का आशीर्वाद देखते हुए तथा अपनी पूर्णताकी श्रद्धा से युक्त, दीनतारहित प्रेम व समग्रता से जीएं। हर कर्म सृजनात्मकता से करते हुए हर पल को एन्जोय करें। उसमें भावना, अनासक्ति व निस्वार्थता का समावेश हो। हर पल निस्वार्थता से जीना वीतराग होने की दिशा में यात्रा है। तब बुद्धि में सजगता व खुले मन से नए ज्ञान के समावेश हेतु उपलब्धता होती जाएगी।

वीतराग अभयत्व का, स्वस्थता का लक्षण है। वीतराग होने पर ही प्रशान्त हो सकते है। जो वीतराग, प्रशान्त होता है, वही अभयस्वरूप ब्रह्म में जग जाता है। अतः कहा वैराग्यमेवाभयम्।

वेदान्त पीयूष

वेदान्त लेख

संस्कारों से मुक्ति

वेदान्त पीयूष

संस्कारों से मुक्ति

जीव जन्म जन्मान्तर से संसार की यात्रा कर रहा है। वह एक शरीर को छोड़कर मृत्यु को प्राप्त करता है और अन्य शरीर में प्रवेश करता है, वो किसी प्रकार की स्थूल वस्तु, अनुभूति की स्मृति आदि साथ में नहीं ले जाता है। यदि वो कुछ ले जाता है तो वह है संस्कार। हर जीव किसी न किसी संस्कार से युक्त होता है। यह कहना भी अतिशयोक्ति न होगी कि जीव संस्कारों की गठ़री है। संस्कार ही उनके व्यक्तित्व को बनाता है। संस्कार एक प्रवाह उत्पन्न करवाते हैं, और जीव उसके वशीभूत होकर बहता जाता है। यह संस्कार अच्छे भी हो सकते है और बुरे भी। वह जिस संग, परिवेश व शिक्षा से युक्त होता है, उन—उनकी छाप मन पर पड़ जाती है। जब किसी भोग्य विषय का आश्रय लेते है, तब उसके अच्छे वा बुरे होने की छाप मन पर पड़ जाती है। जिस प्रकार किसी पुष्प को हाथ में लेकर छोड़ देने पर भी उसकी वास हाथ में रह जाती है। वैसे ही वासना अथवा संस्कार होते है। जो किसी भोग या अनुभूति के पश्चात् अपनी छाप छोड़ देते है। उसके उपरान्त उसीका आवर्तन होता है, हम बेबसी में उसके वशीभूत होकर जीते है। और कुछ न कुछ कर्म का आश्रय लेते है। विचार के लिए अनुपलब्ध हो जाते है।

मन के अन्तर्गत की जो भी ऐसी चीज जिससे हम नए ज्ञान के लिए नहीं, किन्तु कर्म के लिए प्रेरित होते हैं, उसे ही कण्डीशिनंग व संस्कार कहते हैं। यह ही हमारे जीवन की आधारभूत अवधारणाएं होती है, जिसके उपरान्त कर्म का प्रवाह बिना सोचे समझे ही होता है। जिस समय अपने ही जिस निश्चयों की वजह से प्रेरित होकर उनमें बहते जाते हैं, उन पर पुनरालोकन नहीं किया तो वह ही हमारे निश्चयों को और भी दृढ बना देता है। अतः इन निश्चयों पर विचार करना चाहिए। बुद्धि ने विचार करना आरम्भ किया तो मुक्ति का अध्याय आरम्भ हो जाता है। अपने समस्त कर्म व चेष्टाओं के प्रवाह के पीछे जो अवधारणा है, उन पर प्रश्नचिह्न लगाया जाना चाहिए। उसके लिए अन्तर्मुख होकर यह देख पाएं कि इन संसारी संस्कारों से प्रेरित चेष्टाओं से कोई गति नहीं हो पा रही है। जन्म जन्मान्तर से यही प्रवृत्तियां करते आएं हैं, किन्तु हममें कोई मूलभूत परिवर्तन नहीं हो पा रहा है। उसकी गहराई में दीखता है कि उसका आधार अपने बारे में क्षूद्रता की धारणा बनी हुई है, जो कि अज्ञान की वजह से है। उस पर हमने कभी विचार ही नहीं किया है और देखादेखी में जीवन जीते आए है। यह एक संस्कार बन गया है और उसे ही

संस्कारों से मुक्ति

अविचारपूर्वक जीने की वजह से क्षुद्रता की अवधारणा में और भी निष्ठा दृढ़ करते जा रहे हैं।

अत: यह विचार करके देखना चाहिए कि कर्म से कुछ भी प्राप्त करते हैं, तो भी मूलरूप से हम वह ही दीन, खण्ड़ित, क्षुद्र और अपूर्ण ही रहते हैं। उसके माध्यम से हम बाहर अनेकों उपलब्धियां, परिवर्तन आदि कर लेते है। वह भी क्षणिक व अस्थायी ही होती है। उसका परिणाम सदैव भययुक्त, दीनता और पराधीनता का जीवन ही होता है। मूलभूत विकास वा परिवर्तन हमारी किसी भी चेष्टाओं से नहीं होता है। जिस समय अपने समस्त प्रयासों को निष्प्रभाव होते हुए देखते हैं, तो कर्म व प्रयासों से हमारा मोह समाप्त हो जाता है, और उस समय विचार और अन्तर्मुखता आरम्भ होती है। जब कोई खुद अपने उपर विचार करने लगता है तभी वह साधक बनता है। यह ही शिक्षा का योगदान होता है। शिक्षा बुद्धि को जगाने का काम करती है। क्योंकि विचार व बुद्धिपूर्वक जीना मनुष्यत्व का लक्षण है। अज्ञान की वजह से बन्धन है अत: मात्र ज्ञान से ही मुक्ति होती है।

जीव के संस्कार, जीव की अस्मिता आदि सब का आधार अज्ञान हैं। जो विचारपूर्वक जीना आरम्भ करता है, उनमें इस बात का महसूस होती है। तब वह अन्य समस्त जगत को किनारे करके शास्त्र और गुरु का आश्रय लेता है। गुरु के प्रति शरणागत होकर उनके प्रदत्त उपदेश पर खुले मन से विचार करता है। वह जिज्ञासु अन्तर्मुख होकर अपनी दुनिया का अवलोकन करते हैं। यह समस्त जगत व उसके सुख–दु:ख की कल्पना हमारे संस्कार के आधार पर किये निश्चयों पर ही आश्रित है, न कि कोई बाहर से सुखी–दु:खी करता है। इस प्रकार अपने निश्चयों को देखना आरम्भ करना ही कण्डिश्निंग को खत्म करना प्रारम्भ करना है। किन्तु इन सब की गहराई में जो मूलभूत निश्चय है, उसे देखना परं आवश्यक है। वह है अपने जीव होने का निश्चय। जीवभाव एक निश्चय है। समस्त खण्ड़ की दुनिया, ईश्वर, अनुभूतियां, बन्धन, मुक्ति इन समस्त निश्चयों का आधार अपने बारे में जीवत्व का निश्चय है। इन निश्चय के उपर प्रश्नचिह्न लगाते हुए शास्त्रसम्मत गुरुमुख से श्रवण करके विचार करते हैं। जहां कर्म से संन्यस्तता है, यह ज्ञान ही मुक्ति दिलाता है। समस्त संस्कारों से निवृत्ति इन संस्कारी जीव से निवृत्ति के होने पर ही होती है।

वेदान्त पीयूष

हिमालय से ऊँची है माँ,
किन्तु पाषाणसी कठोर नही।
सागर से गहरी है माँ,
किन्तु सागर सी खारी नही ।
वायु सी गतीशील है माँ,
किन्तु वायुसी अदृश्य नही।
परमेश्वरकी जननी है माँ
किन्तु परमेश्वरसी दुर्लभ नही।
माँ की कोई उपमा नही हो सकती
क्योंकि माँ 'उप-माँ' नही
हो सकती।

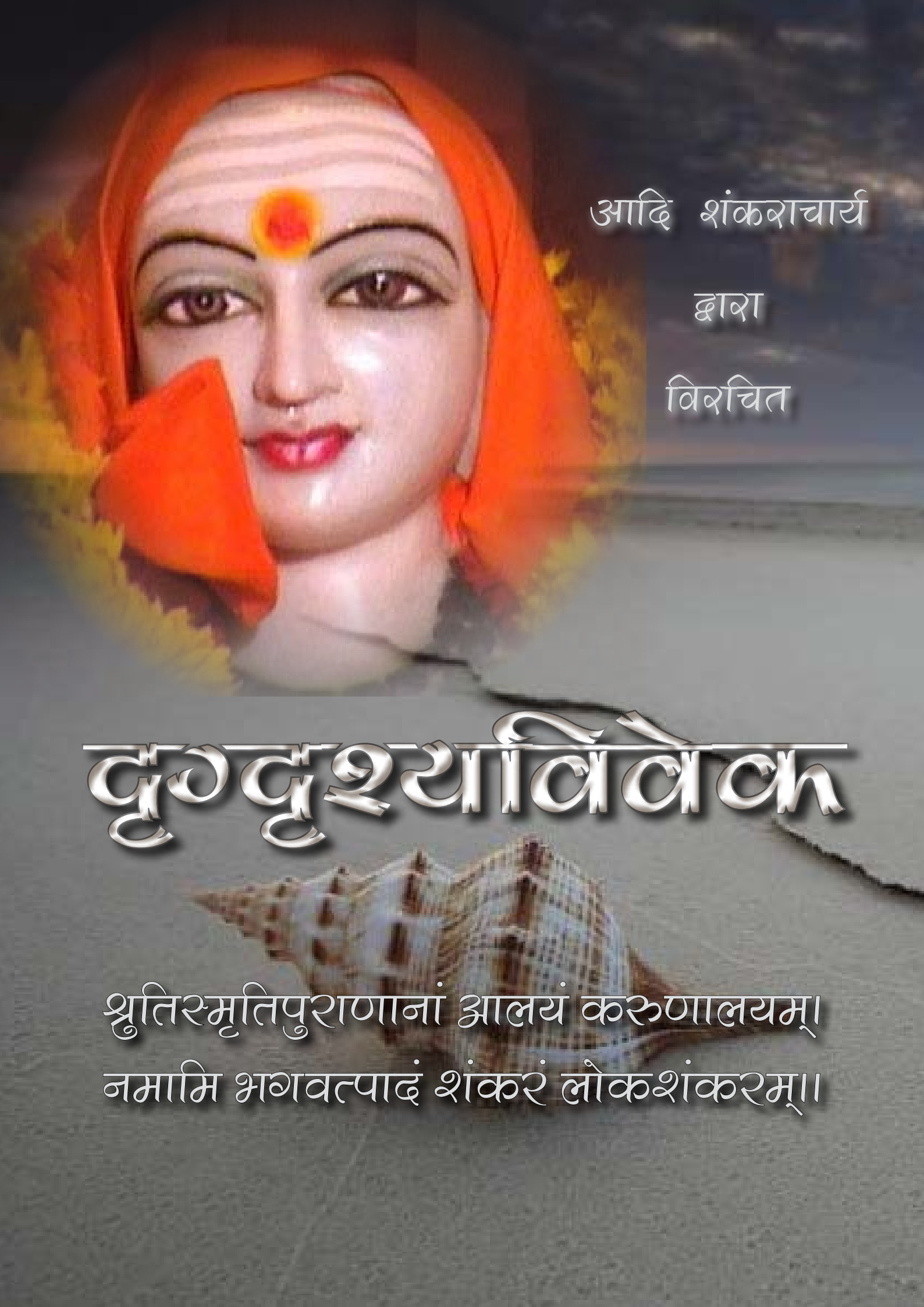

आदि शंकराचार्य

द्वारा

विरचित

दृग्दृश्यविवेक

श्रुतिस्मृतिपुराणानां आलयं करुणालयम्।
नमामि भगवत्पादं शंकरं लोकशंकरम्।।

-श्लोक : २५-

असंगः सच्चिदानन्दः
स्वप्रभो द्वैतवर्जितः।
अस्मीति शब्दविद्धोऽयं
समाधिः सविकल्पकः।।

असंग, सच्चिदानन्द, स्वप्रकाश, द्वैत से रहित ब्रह्म मैं हूं' इस प्रकार अनुसंधान करना ही शब्दानुविद्ध सविकल्प समाधि है।

दृग्दृश्य विवेक

आचार्य इन श्लोकों में हृदि समाधि का वर्णन कर रहे हैं। उसमें सविकल्प समाधि के अन्तर्गत आचार्य ने दो समाधि बताई। १. दृश्यानुविद्ध और २. शब्दानुविद्ध। दृश्यानुविद्ध समाधि अर्थात् दृश्य से सम्बद्ध समाधि। ध्यान के क्षणों में दृष्टा और दृश्य का विवेक करते हुए दृश्य के माध्यम से दृष्टा अर्थात् साक्षी की ओर ध्यान मोड़ा गया। दृश्य के साक्षी बनने पर हमने क्या दृश्य देखा — वह गौण होकर कौन देख रहा है, उन साक्षी की ओर ध्यान जाता है। साक्षी निरपेक्ष दृष्टा है। जब निरपेक्ष दृष्टा बनकर स्थित होते है, तब ही साक्षी के स्वरूप पर गहराई से विचार होता है।

उसके लिए शास्त्र प्रतिपादित शब्दो का आश्रय लेकर विचार किया जाता है तब उसे शब्दानुविद्ध समाधि कहा जाता है। शास्त्र के द्वारा साक्षी के स्वरूप को शब्दों के माध्यम से लक्षित किया गया है। यह शब्द आत्मा की परिभाषा नहीं है। क्योंकि परिभाषित उसे ही किया जाता है जो संकुचित तथा विशिष्टता से युक्त होता है। विशिष्टता उसकी अन्य से विलक्षणता को ही द्योतित करता है — जो कि द्वैत में ही सम्भव होता है। प्रत्येक शब्द आत्मा पर के अध्यारोप का अपवाद करता है। समस्त अध्यारोपों का अपवाद होने पर जो भी अवशिष्ट रहता है वही हमारा सत्य है।

इन लक्षणाओं में तटस्थ, स्वरूप अथवा निषेध लक्षणा होती है। तटस्थ लक्षणा से किसी अस्थायी वस्तु को निमित्त बनाकर स्थायी तत्त्व को लक्षित किया जाता है। साक्षी भी तटस्थलक्षणा है। क्योंकि जिसके साक्षी होते है, वह साक्ष्य पदार्थ आवागमन वाला, अनित्य होता है। निषेघ लक्षणा के माध्यम से समस्त अध्यारोपों का अपवाद होता है, और निषेध की अवधिरूप जो भी शेष रहता है; वह लक्षित होता है।

आचार्य सर्व प्रथम यहां असंग शब्द के माध्यम

दृग्दृश्य विवेक

से लक्षित करते हैं। असंग शब्द परमात्मा का निषेध लक्षण है। हम असंग स्वरूप है। हमारा किसीके साथ संग नहीं है। देहादि के साथ संग अर्थात् तादात्म्य होने पर ही स्वयं को संकुचित, खण्डित व अपूर्ण मान रहे थे। उसके उपरान्त बाह्य दृश्य विषयों के प्रति सुखबुद्धि से प्रेरित होकर कर्म करते है। इस प्रकार कर्तृत्व भोक्तृत्व से युक्त होकर सतत संसरण करते है। किन्तु हम वस्तुत: वो है जिसका देहादि के साथ तादात्म्य हो ही नहीं सकता है। अत: उसके जन्मादि षड्विकार, सुख–दु:खादि क्लेश, रागादि विकार हम में नहीं हैं। हम उन सब से असंग है। असंग शब्द पर विचार करने के द्वारा अपने उपर से स्थूल देह से आरम्भ करके समस्त उपाधि के धर्मों का निषेध हो जाता है। जब स्थूल देह पर विचार करके उसके धर्म से रहित अपने आपको जाना तो हम स्थूल धरातल से उपर उठ़ गएं। स्थूल शरीर की दृष्टि से ही उपर–नीचे, अन्दर–बाहर, छोटा–बड़ा आदि भेद होते है। किन्तु उसके निषेध हो जाने पर हम अत्यन्त व्यापक हो जाते है। जैसे जैसे सूक्ष्मतर धरातल पर निषेध होता जाता है वैसे वैसे समस्त संकुचिता से मुक्त होते जाते है। हम उन सब की संकुचिता और विकारों से रहित एक तत्त्व ही शेष रह जाते हैं। जो समस्त सीमाओं से रहित व्यापकतत्त्व है, वह हम सब को व्याप्त करते हैं। इस प्रकार अपने बारे में संज्ञान के उत्पन्न होने पर शान्त होकर उसी अवस्था में स्थित रहते हैं।

आचार्य दूसरा लक्षण प्रदान करते हैं; 'सच्चिदानन्द'। निषेध लक्षणा का प्रयोग करने पर सम्भावना होती है कि शून्यता की कल्पना हो। अत: यहां सकारात्मक रूप से तत्त्व को लक्षित करने के लिए स्वरूप लक्षणा प्रयोग में लाई जाती है। हम सच्चिदानन्द स्वरूप है। यहां तीन लक्षणा प्रयुक्त है। सत्, चित् और आनन्द। सत् का अर्थ जो सदैव विराजमान है। हम उन सब को जानते हैं, जो काल के प्रवाह में जन्मादि को, आवागमन को प्राप्त होता है और काल से प्रभावित होता है। बाह्य दृश्य से आरम्भ करके हमारी स्थूल, सूक्ष्म समस्त उपाधियों का समावेश उसमें होता है। उन सब को धारण करनेवाला अहंकार भी अन्त:करण के आने पर होता है, किन्तु उसके अभाव में अहंकार का भी अभाव रहता है। एवं अहंकार से लेकर समस्त दृश्यपदार्थ असत् है, उन सबका निषेध हो जाने पर जो शेष रहता है, वह 'मैं' उन सब का अधिष्ठानभूत, काल से अप्रभावित तत्त्व सदैव विराजमान है।

'मैं हूं' इसका कभी भी अभाव नहीं होता है। मैं चित्स्वरूप है। जो चित् नहीं होता है,

दृग्दृश्य विवेक

वह जड़ है। जिसके होने के लिए तथा जानने के लिए अन्य वस्तु, प्रकाश व ज्ञान की आवश्यकता है, वह जड़ है। इसके उपर विचार करने पर यह दीखता है कि मैं वृत्ति से आरम्भ करके समस्त दृश्य जगत किसी अन्य प्रकाश में प्रकाशित हो रहे हैं। उसका होना भी अन्य के निमित्त से है। किन्तु मैं वृत्ति जिस प्रकाश में प्रकाशित हो रही है, वह मैं सदैव जीवन्त प्रकाशस्वरूप है।

मैं ही आनन्दस्वरूप है। जब मैं से भिन्न सब को अनित्य मिथ्या जानने के द्वारा बाधित हो गया तो मैं न भोक्ता है, और न ही कोई भोग्य है। किन्तु मैं अनन्त, अखण्डसत्तामात्र है। यही मेरी आनन्दस्वरूपता है।

मैं स्वयंप्रभः हूं। मुझे जानने के लिए किसी अन्य प्रकाश की अपेक्षा नहीं है। समस्त जगत के प्रकाशित होने के लिए, उनके अस्तित्व हेतु मेरा होना आवश्यक है। अतः अन्य सब नैमित्तिक होने से मिथ्या है। उसका निषेध हो जाने पर जो मैं सबका अधिष्ठान है, वही एक मात्र अवशिष्ट है। जिसमें देश, काल, वस्तु आदिरूप कोई भी भेद नहीं है। इस प्रकार समस्त द्वैत बाधित हो जाने पर मैं द्वैतरहित, एक अद्वय सत्तामसत्र हूं।

उक्त लक्षणों के माध्यम से अपने उपर विचार करके अन्य सब का निषेध हो जाने पर, जो निषेध की अवधि रूप शेष है — वही मैं हूं। इस प्रकार जानकर समस्त शब्द, विचार विराम को प्राप्त हो जाएं। और हमारा होना मात्र ही शेष रह जाएं — यह शब्दानुविद्ध सविकल्प समाधि है।

ईश्वर साध्य है, अन्य सब साधन है,
इस निश्चय को ही विवेक कहते है।

ईश्वर को सांसारिक उपलब्धियों के लिए
साधन बनाना ही अविवेक है।

विवेक का प्रतिबिम्ब ही वैराग्य होता है।

शरणागति से ही वासना त्याग-रूपी
शम नामक गुण प्राप्त होता है।

अविचार से किया हुआ महान से
महान कार्य भी निरर्थक है।

गीता मननम्

गीता अध्याय : 2

स्थितप्रज्ञ प्रसंग

वेदान्त फीचर्स

स्थितप्रज्ञ

गीता के दूसरे अध्याय में भगवान ने पूरी ज्ञान की सिद्धि तक की यात्रा का प्रतिपादन किया तो अर्जुन के मन में भी ऐसे स्थितप्रज्ञ के बारे में जिज्ञासा हुई और इस अध्याय के अन्त में अर्जुन भगवान से उन स्थितप्रज्ञ विषयक पूछता है कि जिनकी बुद्धि अपने स्वरूप में स्थित हो गई है, उनके क्या लक्षण होते है, वे जगत में कैसे विचरण करते है, तथा अपने आपके साथ कैसे बैठते हैं? उनके जीवन में भी जब विविध द्वन्द्वों की प्राप्ति होती है तो उनकी क्या प्रतिक्रिया रहती है?

इसके उत्तर में भगवान इस अध्याय के अन्त में १४श्लोकों में स्थितप्रज्ञ के लक्षण बताते हैं। सब से पहले स्थितप्रज्ञस्य का भाषा अर्थात् स्थितप्रज्ञ के क्या लक्षण होते है?

भगवान बताते हैं कि वे आत्मनि एव आत्मना तुष्टः अर्थात् अपने आपमें अपने आपसे संतुष्ट है। सामान्यतः अज्ञान में विद्यमान हर व्यक्ति में दो विषयक धारणा होती है। १. अपने बारे में २. दृश्य के बारे में। अपने बारे में अज्ञान के कारण स्वयं को संकुचित जीव मान लेता है। इस छोटेपन की धारणा की वजह से सतत उसे दूर करने की अर्थात् संतुष्ट होने की चेष्टा करता है। दूसरी बाह्य दृश्य जगत के बारे में धारणा होती है कि यह हमारी अपूर्णता को दूर करने में सक्षम है और उससे हम संतुष्ट हो सकते है। इन धारणाओं की वजह से वह बहिर्मुख होकर सतत विविध अस्थायी वस्तु, व्यक्ति और परिस्थिति पर संतुष्टि के लिए आश्रित रहता है। किन्तु स्थितप्रज्ञ वह है जो अपने आपको सब के अधिष्ठानभूत पूर्णस्वरूप ब्रह्मतत्त्व जानकर उसमें स्थित हैं। अतः अपने आपमें अपने आपसे संतुष्ट है। उनकी संतुष्टि किसी बाह्य वस्तु, व्यक्ति और परिस्थिति पर निर्भर नहीं है। इसलिए उनमें कोई भी स्वकेन्द्रिता से प्रेरित कामना नहीं होती है।

किं प्रभाषेत — अर्जुन पूछता है कि विविध परिस्थितियों में उनकी कैसी प्रतिक्रिया होती है। उसका उत्तर यहां देते हैं कि वह निष्क्रिय भी नहीं होता है। वह जिस भी परिवेश में है, उसमें उत्साहपूर्वक उनका हर कर्म पूर्णता की अभिव्यक्तिरूप होता है। उनके जीवन में भी अनुकुलता, प्रतिकुलता रूप द्वन्द्वों की सम्भावना होती है। किन्तु उसमें वह न तो उद्विग्न होता है और न ही किसी से आसक्त होता है। क्योंकि उनमें किसीसे राग, द्वेष वा अपेक्षा नहीं होती है। रागादि का अस्तित्व अपने बारे में संकुचित होने की धारणा के उपरान्त स्वकेन्द्रिता के कारण होती है। रागादि के आने के उपरान्त जीवन विवेक के द्वारा संचालित नहीं होते हुए उसीसे प्रेरित प्रतिक्रियात्मक होता है। स्थितप्रज्ञ में उसका अभाव है।

वेदान्त पीयूष

किं आसीत— वह अपने आपके साथ कैसे बैठ़ता हैं? भगवान स्थितप्रज्ञ के लिए बहुत सुन्दर एक दृष्टान्त देते हैं। जिस प्रकार कछुआ बाहर किसी खतरे को पहचान कर अपने अंगों को अपने अन्दर समेट़ लेता है, वैसे ही ज्ञानवान जब इन्द्रियों का प्रयोग अनावश्यक हो तब अपनी इन्द्रियों को विषयों से स्वतंत्रता से विमुख कर देता हैं। वह इन्द्रियों का दास नहीं किन्तु उसका स्वामी बनकर जीता है। उनकी इन्द्रियों में चंचलता नहीं होती है। कई बार अज्ञानी के जीवन में भी यह दीखता है कि कभी असमर्थता वा रोग के कारण विषयों से विमुख हो जाता है। किन्तु उसके मन में उसके प्रति रस बना हुआ है। जब कि ज्ञानवान ने परं रसस्वरूप, आनन्दस्वरूप परमात्मा को अपनी आत्मा रूप से देख लिया है। अत: उनमें विषयों के प्रति महत्वबुद्धि समाप्त हो गई है।

भगवान इसके माध्यम से यहां एक साधक को सावधान करते हैं कि इन्द्रियां बहुत ही बलशाली होती है, जो कि विवेकशील मनुष्य के भी मन को बलात विषयों के प्रति घसीटकर ले जाती है। अत: मात्र इन्द्रियां अथवा मन के धरातल पर ही प्रयास करना पर्याप्त नहीं होता है। विवेक उत्पन्न करने के साथ साथ भगवान एक महत्वपूर्ण चीज यह बताते हैं कि 'युक्त आसीत मत्पर:।' तुम हमारे परायण हो। अर्थात् मन में भी ज्ञान के प्रति श्रद्धा के साथ परमात्मा का ही महत्व स्थापित होना चाहिए। विषयों के प्रति महत्वबुद्धि की समाप्ति और परमात्मा के प्रति विशेष प्रेम की जाग्रति का नाम ही वैराग्य है। जिसके मन में परमात्मा के प्रति प्रेम व ज्ञान के प्रति श्रद्धा के अभाव में अपनी ब्रह्मस्वरूपता की श्रद्धा का अभाव है, वह अपने छोटेपन की निवृत्ति हेतु विषयों के प्रति महत्वबुद्धि से युक्त रहता है। यही उसके पतन का हेतु बनता है।

इस पतन की प्रक्रिया को बहुत सुन्दर तरीके से बताते है कि ध्यायतो विषयान्पुंस:.....प्रणश्यति। अज्ञानवश छोटेपन को दूर करने की प्रेरणा से विषयों का महत्व स्थापित होता है, इस वजह से विषयों का सतत ध्यान उसमें संग अर्थात् उसमें भावना जगाता है। इस भावना की वजह से कामना होती है। यदि कामनापूर्ति हो गई तो उससे संतुष्टि नहीं होती है, क्योंकि वह जड़ और अस्थायी विषय में यह सामर्थ्य ही नहीं है। अत: सतत

वेदान्त पीयूष

स्थितप्रज्ञ

कामनाएं बनी रहती है। और यदि कामनापूर्ति नहीं हुई तो असमर्थता के कारण क्रोध के वशीभूत होकर विचार का सामर्थ्य खो बैठ़ता है और अन्ततः विवेकादि सब इस काम, क्रोधादि की आंधी में तहस नहस हो जाता है। इस वजह से मानों अपना ही विनाश कर बैठ़ता है। वह मनुष्य कहलाने योग्य नहीं रहता है। उसके पीछे किसी विषय, वस्तु वा परिस्थिति का दोष नहीं है। किन्तु स्वयं की अस्मिता को जो संकुचित बना लिया है, उस वजह से विषयादि उसके लिए भोग्य पदार्थ मात्र होते है।

उससे मुक्ति का उपाय अपनी संकुचित अस्मिता का त्याग है। हम अपने आपको जगदीश्वर, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, जगन्नियन्ता ईश्वर के दूत जानें। हम छोटे नहीं है किन्तु ऐसे महान के सेवक है अथवा अपनी ब्रह्मस्वरूपता की श्रद्धा से युक्त होकर जीएं। तब विषयेां के प्रति राग—द्वेष से मुक्त होते जाते हैं। प्रत्येक परिस्थिति प्रसादरूपा हो जाती है। प्रसाद से मन की प्रसन्नता होती है। वही जीवन के क्लेशों से मुक्ति का हेतु बनती है। वही अन्ततः मुक्ति का ज्ञान प्राप्त करके स्थितप्रज्ञ हो जाता है। ज्ञानवान जगत के मध्य में दीनता से मुक्त पूर्णता से युक्त विचरण करता है। अतः हर परिस्थिति में वह समत्व से युक्त रहता है। उसका हर कार्य पूर्णता की अभिव्यक्तिरूपा होता है।

अन्त में भगवान बताते हैं कि ज्ञानवान और अज्ञानी के जीवनदर्शन में दिवस और रात्री के समान भेद है। अज्ञानी जिसे सत्य मानकर जीता हैं, उसे ज्ञानवान एक स्वप्नवत जानता है। और दूसरी ओर ज्ञानवान जिस सत्य में जगा हुआ है, वह अज्ञानी के लिए कल्पना से परे है। ज्ञानवान की मनोस्थिति एक असीम जलराशि समुद्र की तरह होती है। जिस प्रकार समुद्र में हजारो गेलन जल नदियों के द्वारा प्राप्त होता है किन्तु उनमें कभी भी बाढ़ नहीं आती है। तथा कितनी भी प्रचण्ड़ गर्मी हो जाएं तो भी समुद्र कभी भी सूखता नहीं है। वैसे ही ज्ञानवान की पूर्णता किसी भी बाहरी परिस्थितियों से प्रभावित नहीं होती है। न कभी उसमें अतिरेक होता है और न ही उसमें न्यूनता होती है। इस ज्ञान से जो भी युक्त होता है वह शरीर छोड़ने पर मुक्त तो हो ही जाता है, साथ ही वह जीते जी मुक्त ही है। इस प्रकार भगवान स्थितप्रज्ञ का बहुत सुन्दर चित्रण किया।

श्रीकृष्ण का उपदेश (भोलेबाबा)

जो खाइये जो पीजिये,
जो होमिये, जो दीजिये।
तप किजीये व्रत कीजिये,
मेरे लिए ही कीजिये।।
ना राग है शुभ से जिसे,
नाहीं अशुभ से द्वेष है।
सो भक्त जीवन्मुक्त है, यह कृष्ण का उपदेश है।।

(श्री रामचरित मानस पर आधारित)

श्री लक्ष्मण चरित्र

—०५—

बन्दउं लछिमन पद जल जाता। सीतल सुभग भगत सुखदाता॥
रघुपति कीरति बिमल पताका। दण्ड समान भयउ जस जाका॥

लक्ष्मण चरित्र – ०५

अयोध्या से आरम्भ हुई यात्रा महर्षि विश्वामित्र के आश्रम में पहुंचकर समाप्त हुई। इस यात्रा के रंग अनोखे थे। प्रारम्भ में जहां तेजस्वी राजकुमारों के रूप में यात्रा आरम्भ हुई, वहां मध्य में बाललीला के अनोखे कौतुक से एक भिन्न ही रस की सृष्टि हुई। अचानक ताड़का के आने से पुन: रस परिवर्तन हुआ और रघुवीर का शौर्य पुन: सामने आया। उनके एक ही बाण से क्रूर हृदया ताड़का विनष्ट हो गई। लक्ष्मण ताड़का वध का यह कार्य राघव द्वारा ही सम्पन्न होने देते हैं। दुष्ट दलन के कार्य का श्री गणेश अग्रज से ही हो, उन्हें यही उपयुक्त प्रतीत हुआ। पर दूसरे दिन यज्ञरक्षा के अवसर पर लक्ष्मण का अद्‌भुत पराक्रम सामने आया। श्रीराम यहां मारीच और सुबाहु को लेकर ही उलझे रह गए वहां निशाचरों की सारी सेना का संहार लक्ष्मण के द्वारा सम्पन्न हुआ।

बहुत वर्षों के पश्चात् प्रभु को लक्ष्मण के इस महान् शौर्य की स्मृति हो आई, यह अवसर लंकायुद्ध पूर्व का था। सुग्रीव विभीषण की शरणागति का विरोध कर रहे थे। उन्हें इसके पीछे रावण की दुरभिसंधि दिखाई दे रही थी। उन्हें आशंका थी कि उनकी सेना के सारे भेद विभीषण के द्वारा रावण तक पहुंच जाएंगे। अपने विचार वे स्पष्ट शब्दों में राघव के समक्ष रख देते हैं। इसके उत्तर में रघुवीर ने उन्हें आश्वस्त किया कि, यदि ऐसा हो तो भी किसी भय और हानि की कोई आशंका नहीं है। सुग्रीव प्रभु की इस निश्चिंतता पर चकित थे। प्रभु के पराक्रम से परिचित होते हुए भी वह लंका के युद्ध की गुरुता को कम करके आंकने के लिए प्रस्तुत नहीं थे। सुग्रीव को लगा कि वह प्रभु को उनके पूर्व पौरुष का स्मरण कराएं। पर प्रभु ने अपने सामर्थ्य की स्मृति दिलाने के स्थान पर सुग्रीव का ध्यान उस महान् योद्धा की ओर आकृष्ट किया, जिसके सामर्थ्य से कपिराज अभी तक अपरिचित थे। वह योद्धा लक्ष्मणजी थे। राम की स्वयं से कहीं अधिक आस्था अपने भाई पर थी। उसी अविचल आस्था को जिसका पूर्वानुभव उन्हें महर्षि विश्वामित्र के यज्ञ में हो चुका था, वे सुग्रीव के सामने प्रकट कर देते हैं।

यह प्रशंसा कोई अतिशयोक्ति नहीं थी, किन्तु सर्वथा यथार्थ सत्य की घोषणा मात्र थी। वस्तुत: लक्ष्मण ने अपने पूर्ण पौरुष का प्रदर्शन कभी किया ही नहीं। इसके पीछे उनकी आत्मत्याग की भावना ही सक्रिय थी। उन्हें दण्ड की भूमिका प्रिय थी। वे स्वयं की कीर्ति को पताका बनाकर फहराने के लिए रंचमात्र उत्सुक नहीं थे। वे प्रभु के आदर्श को ही क्रियान्वित करते हैं। यशकामी व्यक्ति बहुधा सारा यश स्वयं ही ले लेने को व्यग्र हो जाते हैं। किन्तु प्रभु का स्वभाव इसके सर्वथा भिन्न है। वे दूसरों को यश देकर प्रसन्न होते हैं। लंका–विजय का श्रेय बन्दरों को देकर उन्हें अपार

वेदान्त पीयूष

लक्ष्मण चरित्र – ०५

प्रसन्नता हुई थी। 'तुम्हरे बल मैं रावन मार्यो' कहकर वे बन्दरों के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं। व्यक्ति ऋणमुक्त होना चाहता है। पर इसके विपरीत रामभद्र ऋणी रहकर आनन्दित होते हैं। लक्ष्मण के द्वारा समस्त राक्षसों का वध कर दिए जाने पर प्रभु उस ऋणानन्द से वंचित हो जाते। लक्ष्मण अपने प्रभु की प्रसन्नता में ही प्रसन्न होते हैं। सुग्रीव के समक्ष 'लछिमन हनइ निमिष महं तेते' कहकर वे आत्मश्लाघा का प्रदर्शन नहीं कर रहे थे। वे तो केवल सुग्रीव की आशंका का निवारण मात्र करना चाहते थे।

महर्षि के यज्ञ की रक्षा के पश्चात् दोनों भाई विश्वामित्र के साथ जनकपुर पधारते हैं। जनकपुर में लक्ष्मण की बहुरंगी भूमिकाओं को देखकर चकित रह जाना पड़ता है। नगरदर्शन, पुष्पवाटिका, धनुषयज्ञ और परशुराम से वार्तालाप करते हुए उनके स्वरूप की झांकी एक–दूसरे से सर्वथा भिन्न है। नगर दर्शन में उनकी भूमिका एक ऐसे किशोर की है जिसके अन्त:करण में मिथिलापुरी देखने की उत्कृष्ट आकांक्षा है। पर अपने अनुशासनप्रिय स्वभाव के कारण कुछ कहने में संकोच का अनुभव करते हैं। किन्तु राघव उनकी आकांक्षा की पूर्ति के लिए महर्षि से आदेश मांग लेते हैं। महर्षि से उन्होंने यही कहा था कि लक्ष्मण नगर देखना चाहते हैं : 'नाथ लखन पुर देखन चहही।' इससे ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे वे स्वयं को बचाने की चेष्टा कर रहे हैं। यह उनके स्वभाव के अनुकुल प्रतीत नहीं होता। यदि वे महर्षि से यह कहते कि 'मैं नगर देखना चाहता हूं' तो यह उनके स्वभाव और शील के अधिक अनुरूप होता। नगरदर्शन की लालसा को वे लक्ष्मण में ही आरोपित करते हैं, स्वयं में नहीं। यह लक्ष्मण के प्रति उनके अपनत्व और प्रगाढ़ विश्वास का परिचायक है।

श्रद्धा ही ज्ञान की जननी है।

शास्त्र और गुरु में विश्वास ही श्रद्धा है।

वेदान्तवाक्यों में श्रद्धा का अभिप्राय

- अपनी पूर्ण स्वरूपता की श्रद्धा है।

गुरु के प्रति श्रद्धा का अभिप्राय

- गुरु को साक्षात्ब्रह्मस्वरूप जानना है।

श्रद्धा में विश्वास के साथ

बुद्धि की जागृति होना परं आवश्यक है।

जीवन्मुक्त

—१२—

ऋषीकेश

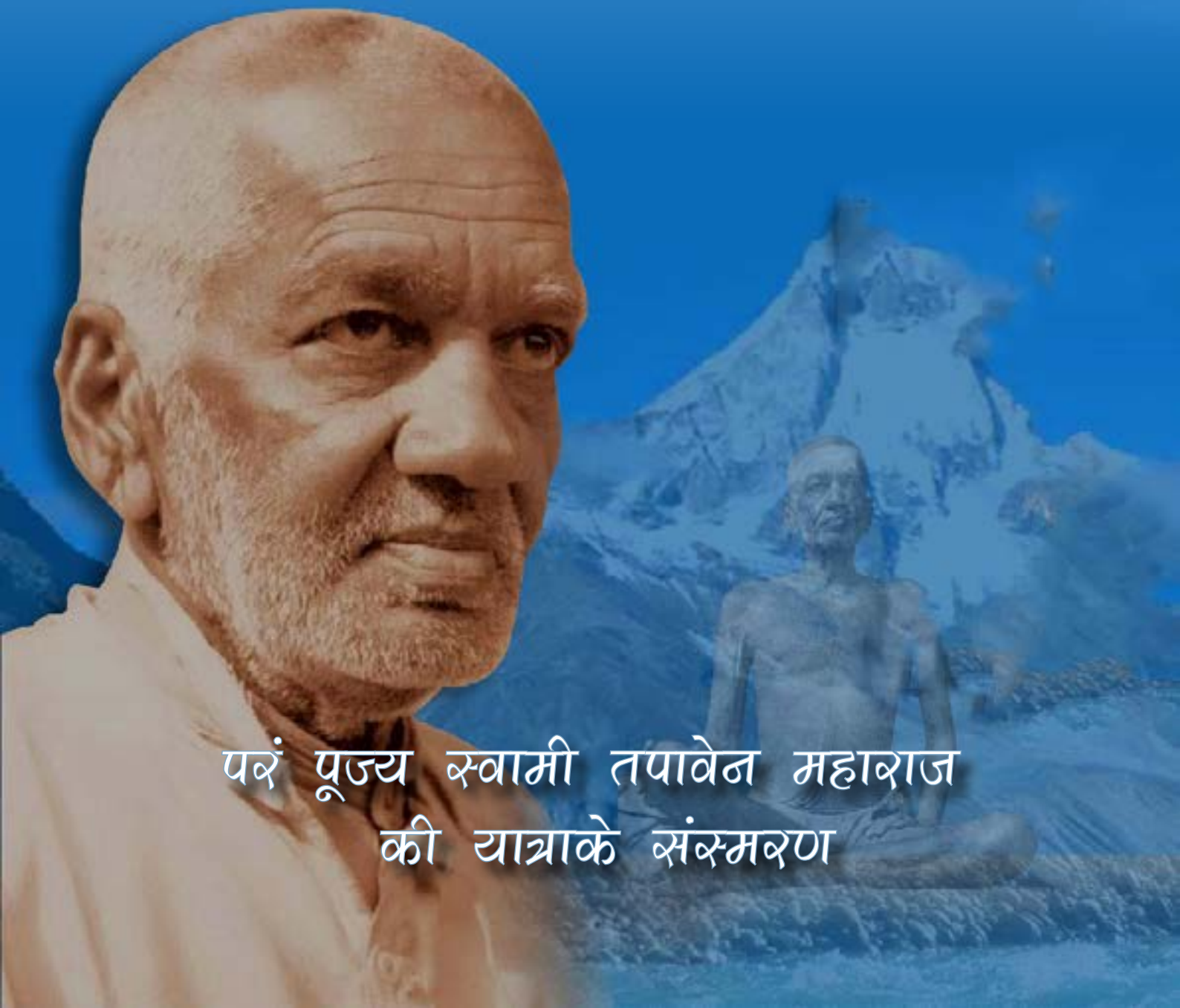

परं पूज्य स्वामी तपोवन महाराज
की यात्राके संस्मरण

जीवनमुक्त – १२

वस्तुतः माया को जीत लेना ही मानव जीवन की मुख्य प्राप्य वस्तु है। इस प्रकार की

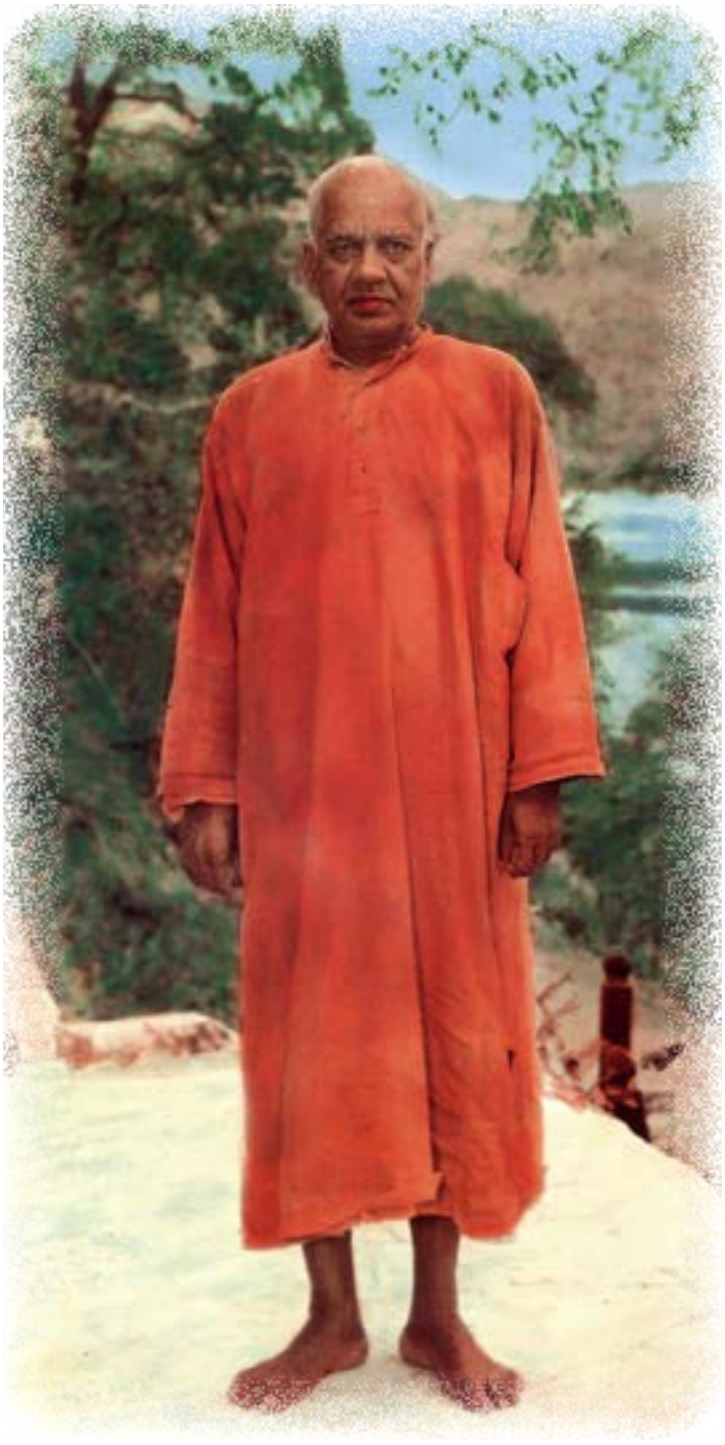

प्रचण्ड प्रतापशालिनी महामाया को जीतने के लिए माया नियामक करुणानिधि परमेश्वर की शरणमें आये बिना और कोई रास्ता नही है। साक्षात् परमेश्वर, कामदहन और तपोमूर्ति श्री विश्वनाथ जहां विद्यमान है, वहां माया का प्रवेश नही होता। अतः काशी में श्रीविश्वनाथ के चरणारविन्दों के आश्रय में रहनेवाले महात्मा लोग महामाया को जीतते हुए ही विराजमान् है। भगवान् के पादों पर दत्तचित्त उन लोगों के पास माया फटकने भी नही पाती। कामीनि और कंचन सपने में भी उनको छू नहीं सकते। नामयश की भ्रांति तक उनके पास नहीं पहुच सकती। रागद्वेषों से भरा और नाना प्रकार की मोहन वस्तुओं से भारान्वित एक जगत् शशविषाण के समान उनके सामने शून्य होता है। दुःख में सुख, अनात्मा में आत्मा आदि का भ्रम, उसमें से उत्पन्न आशापाश अथवा मानसिक दुर्बलता ये सब विश्वनाथ पुरी में घुस नही पाते। माया के जादू, माया के तत्त्वों से अनभिज्ञ प्राकृतजनों को छोड़कर महेश्वर के भक्तों पर प्रभाव नहीं डाल सकते। माया कितनी ही प्रचंड क्यों न हो, तो भी परमेश्वरकृपा के वरायुध से युक्त पुरुष उसका सामना कर उसे जीत सकता है। सब शास्त्रों का सिद्धांत यह है कि माया विजय के लिए ईश्वर की करुणा के सिवा और कोई हथियार नही है।

इस प्रकार जिस देश में, जिस देव के सामने, महामाया की मोहन प्रवृत्तियों का प्रवेश नही होता,

जीवनमुक्त – १२

'उत्तरकाशी' तथा 'सौम्यकाशी' के नाम से मशहूर उस पुण्यक्षेत्र में विश्वनाथ की सन्निधि में मैं पहले पहले सन् १९२४ के अप्रैल महीने में गया था। हिमालय पर्वत मेघगर्जन का बाजा बजाते और वृष्टि की पुष्पवर्षा करते हुए अपने घर में आए हुए इस नवागत साधु का स्वागत कर रहा था। साधु महात्मा सब कहीं आदर के पात्र हैं। नगर के बीच में हों, या पहाड की चोटी पर वे समान रूप से आदर पाते हैं। संन्यासी विष्णुस्वरूप है। पण्डाल की तरह फैलकर नीचे लटकी काली घटाएं तथा तोरणों की भांति पहाड़ों की बग़ल में नीचे लटका इन्द्रधनुष इस साधु को अत्यन्त आनंद देता था। हिमगिरि के हृदय में विराजमान उत्तरकाशी की एकान्त रमणीयता और नितान्त पवित्रता ने मेरे अन्तरतम को बहुत ही आवर्जित कर दिया था। इस प्रकार साधु और भक्तरूप में हिमालय के द्वारा प्रेमपूर्वक स्वागत किये जाने पर, मैं यद्यपि उस बार अधिक समय तक वहां नहीं रहा, तो भी बाद में कई बार वहां जाकर अधिक दिनों तक ब्रह्मविचार में लीन ईश्वरीय जीवन बिताता रहा। चित्त को सत्त्वगुणी बनाए सदा ईश्वर के ध्यान और उसके शास्त्र विचार में निमग्न होकर अनन्यचित्तता के साथ एक आनंदमय जीवन बिताने में इतनी अनुकूल तपोभूमियां तुहिनगिरि में सुलभ होती है। हिमगिरि का शिखर! भागीरथी का तट! विश्वनाथपुरी! महात्मा महर्षि पुंगवों की विहारभूमि! बड़ा ही रमणीय निर्जन वनप्रदेश! इनसे बढ़कर तत्त्वनिष्ठा के साथ एक सन्यासी जीवन बिताने में भला और कौन सी अनुकूलता अपेक्षित है?

अध्यात्म साधना में गुरु का स्थान अप्रतिम है। व्यावहारिक जगत् में भी मार्गदर्शक के अभाव में यात्री बहुधा भटक जाया करता है।

फिर उस अज्ञात देश की यात्रा का तो कहना ही क्या है, जहां साधक के लिए सब-कुछ अन्जाना है!

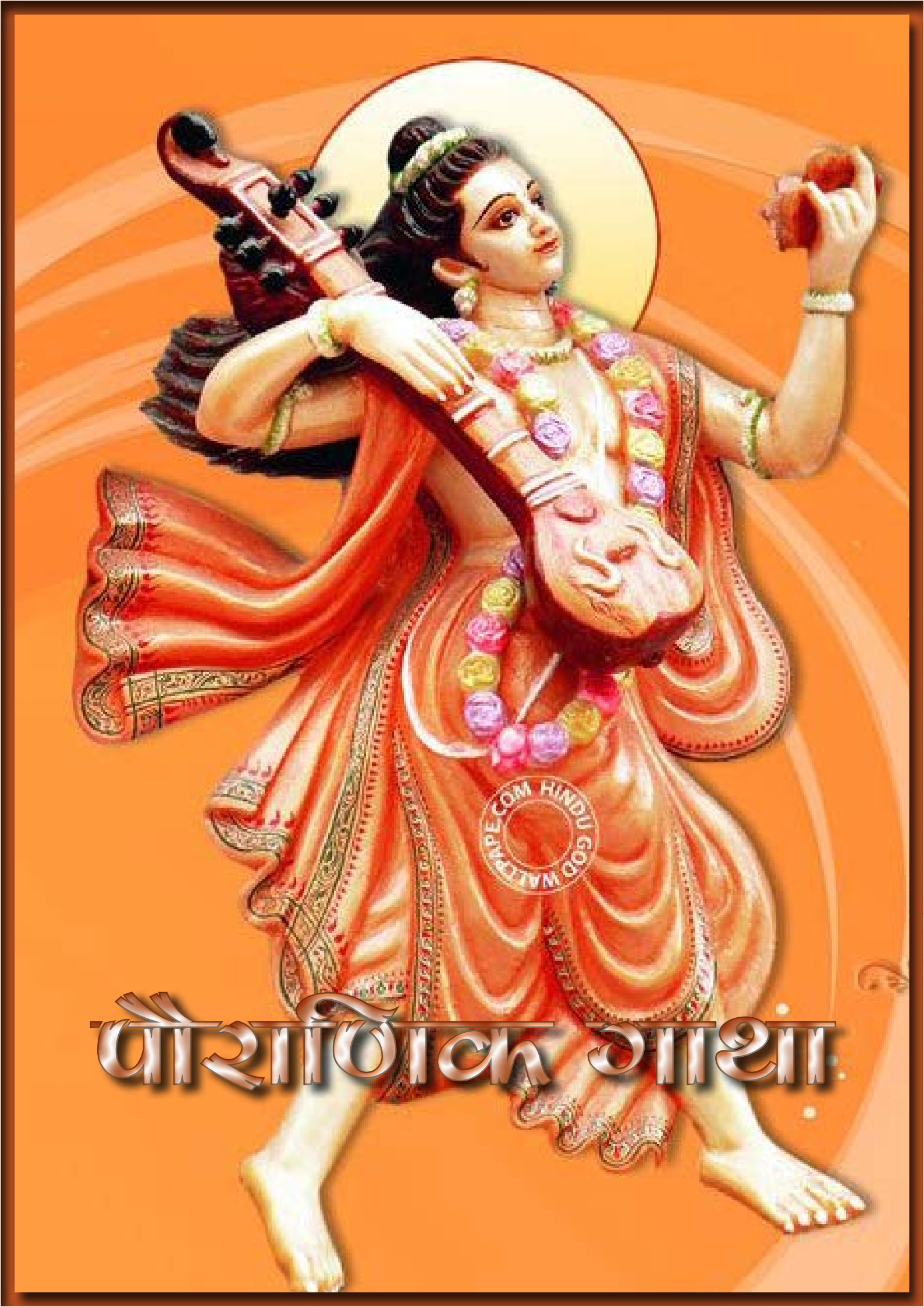
पौराणिक गाथा

अर्जुन – उलूपी विवाह

अर्जुन की द्रौपदी के अलावा सुभद्रा, चित्रांगदा तथा उलूपी नामक तीन और पत्नियां थी। उसमें चौथी पत्नी उलूपी पाताल लोक के नागराज की पुत्री एवं नागकन्या थी। उन्होंने ही अर्जुन को जल में बगैर हानि के रह पाने का वरदान दिया था। महाभारत युद्ध में गुरु व भीष्म पितामह को मारने के बाद ब्रह्मापुत्र से शापित अर्जुन को उलूपी ने ही मुक्त कराया था। तथा अपने सौतेले पुत्र बभ्रुवाहन के द्वारा अर्जुन के मारे जाने पर उलूपी ने ही मणिका संजीवनी से उन्हें जीवित किया था। विष्णुपुराण के अनुसार उलूपी ने इरावन नामक पुत्र को जन्म दिया था; उसे भारत के सभी किन्नर अपना इष्टदेव मानते है। उलूपी अर्जुन के सदेह स्वर्गारोहण के समय उनके साथ थी।

यह सर्वविदित है कि द्रौपदी का विवाह पांच पाण्डवों के साथ हुआ था। द्रौपदी प्रत्येक पाण्डव के साथ एक–एक वर्ष के समय अन्तराल के लिए सहवास करती थी। उस समय किसी अन्य पाण्डव का प्रवेश द्रौपदी के आवास में वर्जित था। जो इस नियम का उलंघन करें उनके लिए एक वर्ष के लिए देशनिकाला का दण्ड रखा गया था।

द्रौपदी का अर्जुन के साथ सहवास अभी अभी समाप्त हुआ था और युधिष्ठिर के साथ एक वर्ष का सहवास समय आरम्भ हुआ ही था। अर्जुन अपना गाण्डीव धनुष प्रमादवश द्रौपदी के ही आवास में भूल गएं। उसी सयम किसी दुष्ट से ब्राह्मण और पशुओं की रक्षा करने के लिए उन्हे तीरधनुष की आवश्यकता पड़ी। इस वजह से अर्जुन अपने क्षत्रियधर्म का पालन करने हेतु द्रौपदी के द्वारा बनाए गए नियम का उलंघन करने के लिए विवश हो गएं। और उन्हें द्रौपदी के आवास में प्रवेश करना पड़ा।

परिणामस्वरूप एक वर्ष की अवधि के लिए उसे देशनिकाला होना पड़ा। इस समय दौरान अर्जुन का नागलोक में प्रवेश हुआ और वहां नागकन्या उलूपी के साथ सम्पर्क में आएं। उलूपी अर्जुन के प्रति मोहित हो गई। दोना विवाह सम्पन्न हुआ तथा अर्जुन वहां एक वर्ष उलूपी के साथ रहकर अपने राज्य में लौट आएं। उसी दौरान उनसे इरावन नामक संतान की प्राप्ति हुई।

वेदान्त पीयूष

Mission & Ashram News

Bringing Love & Light in the lives of all with the Knowledge of Self

आश्रम समाचार

महाशिवरात्री पर्व

११ मार्च २०२१

श्री गंगेश्वर महादेव अभिषेक

प्रथम प्रहर का अभिषेक

वेदान्त फीचर्स

आश्रम समाचार

महाशिवरात्री / ११ मार्च

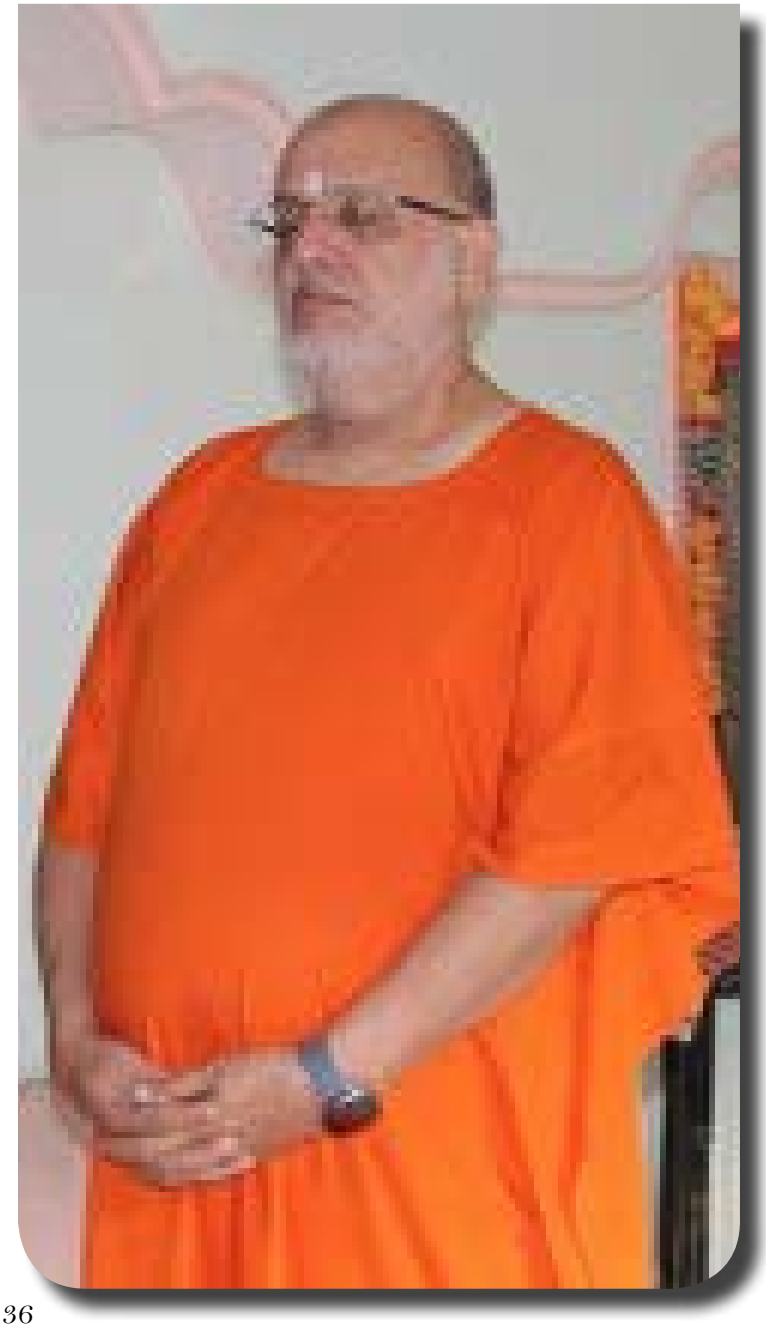

अन्य समाचार

११ मार्च
२०२१

महाशिवरात्री

अन्य समाचार

११ मार्च
२०२१

महाशिवरात्री

अन्य समाचार

पूज्य गुरुजी से आशीर्वाद ग्रहण

११ मार्च २०२१

महाशिवरात्री

आश्रम समाचार

११ मार्च
२०२१

महाशिवरात्री

ओम् नमः
शिवाय

वेदान्त फीचर्स

आश्रम समाचार

११ मार्च २०२१ / महाशिवरात्री पर्व

आश्रम समाचार

११ मार्च २०२१

महाशिवरात्री

श्री गंगेश्वर महादेवका अभिषेक

आश्रम समाचार

११ मार्च २०२१

महाशिवरात्री

सायं पूजा

ओम् नमः शिवाय

आश्रम समाचार

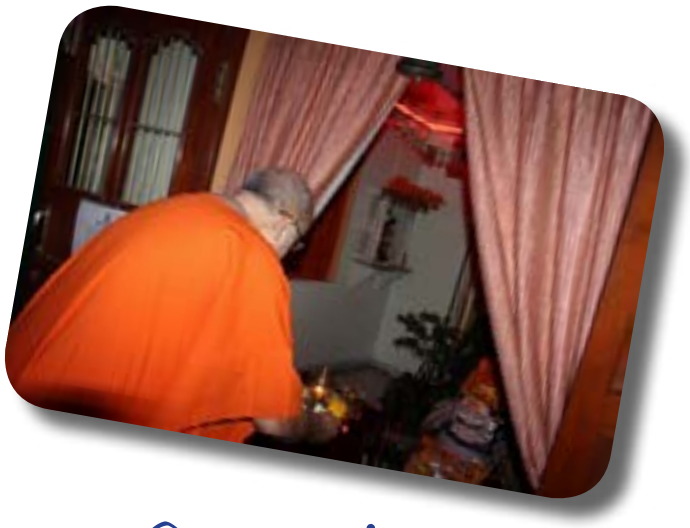

श्री गंगेश्वर महादेव का दिव्य श्रृंगार

सायं आरती

आश्रम समाचार

महाशिवरात्री पर्व

११ मार्च २०२१

सायं आरती

श्री गंगेश्वराय नमः

आश्रम समाचार

महाशिवरात्री / ११ मार्च

आश्रम समाचार

११ मार्च
२०२१

महाशिवरात्री

आश्रम समाचार

वन्दे शिवं शंकरम्

महाशिवरात्री उत्सव

आश्रम समाचार

ओम् नन्दीश्वराय नमः

महाशिवरात्री उत्सव / ११ मार्च

वेदान्त फीचर्स

आश्रम समाचार

११ मार्च
२०२१

महाशिवरात्री

ओम् नमो भगवते रुद्राय

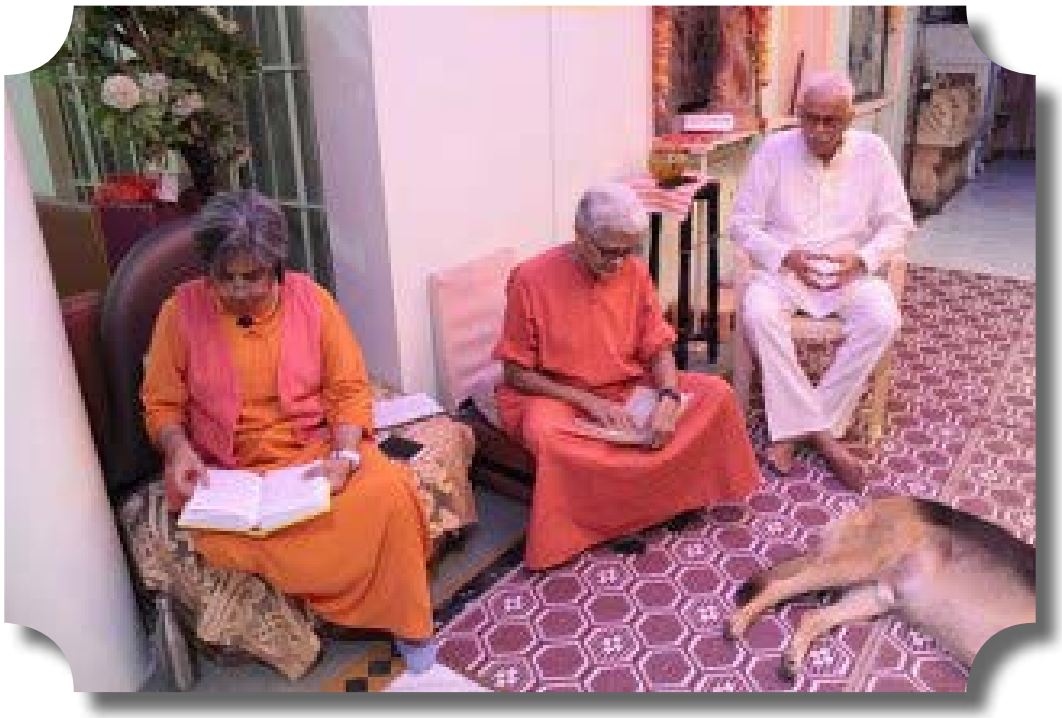

वेदान्त फीचर्स

आश्रम समाचार

ओम् नमः शिवाय

महाशिवरात्री / ११ मार्च २०२१

वेदान्त फीचर्स

आश्रम समाचार

२९ मार्च २०२१

होली पर्व

होली के हसगुल्ले

वेदान्त फीचर्स

आश्रम समाचार

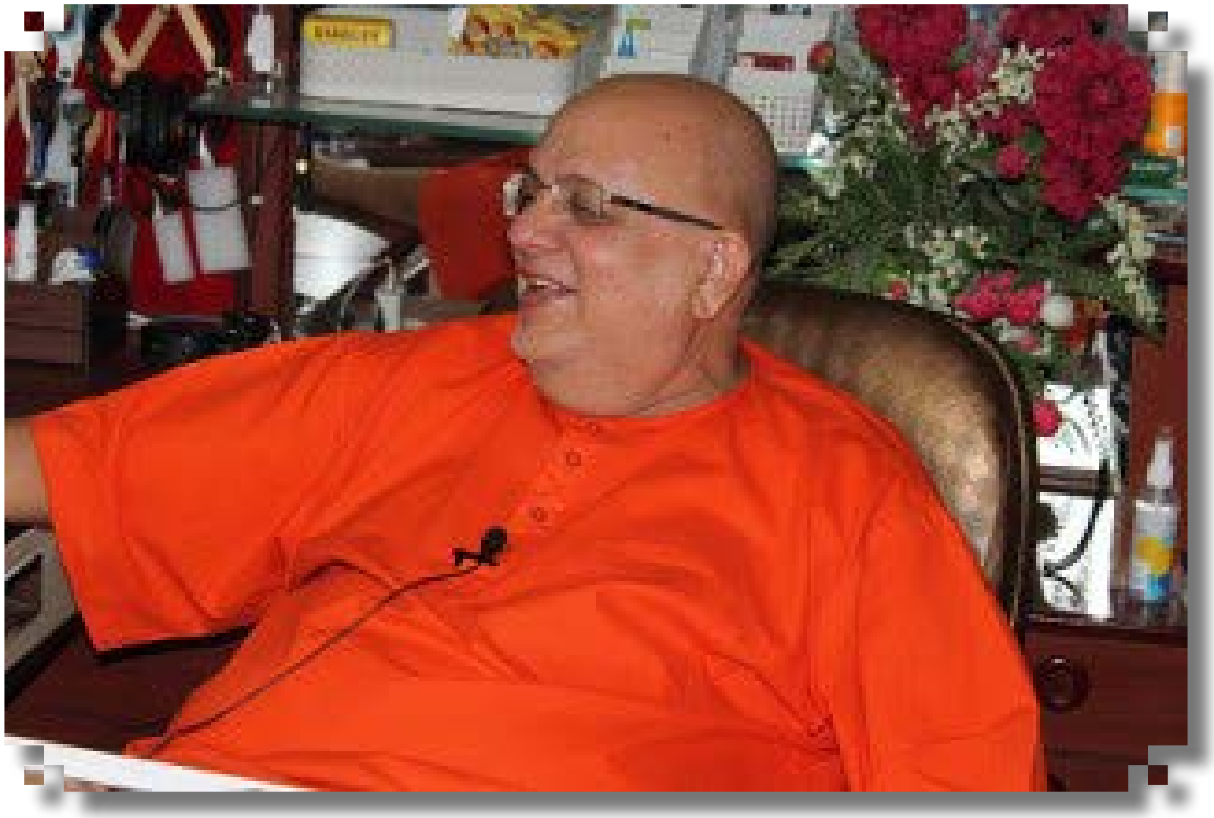

होली के हसगुल्ले

२९ मार्च / होली पर्व

आश्रम समाचार

२९ मार्च २०२१

होली पर्व

होली के हसगुल्ले

वेदान्त फीचर्स

आश्रम समाचार

झाड़ उखाड़ हनुमान मन्दिर

मार्च
२०२१

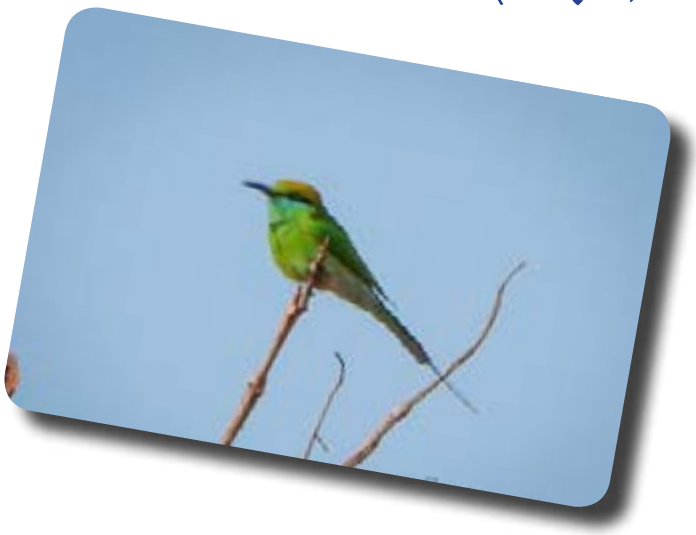

इन्दौर के समीप

Internet News

Talks on (by P. Guruji) :

Video Pravachans on YouTube Channel

- ~ Eksloki Pravachan
- ~ Sampoorna Gita Pravachan
- ~ Kathopanishad Pravachan
- ~ Kathpanishad Chanting
- ~ Shiva Mahimna Pravachan
- ~ Bhaja Govindam
- ~ Hanuman Chalisa

Audio Pravachans

- ~ Sampoorna Gita Pravachan
- ~ Eksloki Pravachan
- ~ Eksloki Chanting

Vedanta & Dharma Shastra Group on FaceBook

Vedanta Ashram YouTube Channel

Monthly eZines

Vedanta Sandesh ~ Apr '21 (Eng)

Vedanta Piyush ~ Mar'21 (Hin)

आश्रम / मिशन कार्यक्रम

२४ अप्रैल २०२१ . सायं ७.०० बजे

ओनलाईन मासिक सत्संग

प्रार्थना एवं प्रवचन

आश्रम परिवार के सदस्यों के लिए विशेष

पूज्य गुरुजी स्वामी आत्मानन्दजी

प्रतिदिन प्रातः ७.०० बजे

(मंगलवार से शनिवार)

मुण्डकोपनिषद् प्रवचन (शांकर भाष्य)

आश्रम के संन्यासियों के लिए

पूज्य गुरुजी स्वामी आत्मानन्दजी

वेदान्त फीचर

Visit us online :
Vedanta Mission

Check out earlier issues of :
Vedanta Piyush

Visit the IVM Blog at :
Vedanta Mission Blog

Published by:
International Vedanta Mission

Editor:
Swamini Amitananda Saraswati